Online at: https://researchtrendsjournal.com **ISSN No:** 2584-282X
Indexed Journal **Peer Reviewed Journal**

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 3; Issue 2; 2025; Page No. 67-70

Received: 02-01-2025
Accepted: 09-02-2025

मौर्यकालीन भारत में कृषि प्रणालीः संरचना, तकनीक एवं सामाजिक प्रभाव

डॉ. अजय कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय, देवबंद, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.15511928

Corresponding Author: डॉ. अजय कुमार

सारांश

मौर्यकाल भारतीय इतिहास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण चरण रहा है, जिसमें न केवल राजनीतिक और प्रशासनिक संरचना का उत्कर्ष हुआ, बल्कि कृषि, उद्योग और व्यापार के क्षेत्रों में भी अभूतपूर्व प्रगति देखी गई। प्रस्तुत शोध पत्र मौर्यकालीन भारत की कृषि प्रणाली का गहन अध्ययन करता है, जिसमें उस काल की कृषि संरचना, प्रयुक्त तकनीकों, सिंचाई साधनों, भूमि वितरण की पद्धतियों और कृषक वर्ग की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह अध्ययन कृषि प्रणाली के सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को भी रेखांकित करता है।

मूलशब्दः मौर्यकाल, कृषि प्रणाली, सिंचाई तकनीक, भूमि वितरण, कृषक वर्ग, सामाजिक प्रभाव, अर्थव्यवस्था, प्राचीन भारत।

प्रस्तावना

मौर्य साम्राज्य (ईसा पूर्व 321–185) भारतीय उपमहाद्वीप का प्रथम महान साम्राज्य था, जिसकी स्थापना चंद्रगुप्त मौर्य ने की थी। यह काल केवल एक सैन्य और प्रशासनिक क्रांति का ही नहीं, अपितु आर्थिक दृष्टि से भी समृद्ध युग था। कृषि को मौर्य शासन में आर्थिक जीवन की रीढ़ की हड्डी माना गया था, और इसकी समृद्धि से ही राज्य की स्थिरता और सामाजिक संरचना का निर्धारण होता था। इस शोध पत्र में मौर्यकालीन कृषि की विविध परतों को खोलते हुए उसकी तकनीकी, सामाजिक और आर्थिक धाराओं को समझने का प्रयास किया गया है।

भारतीय उपमहाद्वीप का इतिहास अपने गर्भ में न केवल महान राजवंशों की कहानियाँ समेटे हुए है, बल्कि उन सामाजिक और आर्थिक रचनाओं को भी छिपाए हुए है, जिन्होंने हमारी सभ्यता की नींव रखी। इन्हीं में से एक अद्भुत और सशक्त अध्याय मौर्य साम्राज्य का है, जिसकी स्थापना चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा ईसा पूर्व 321 में की गई थी। यह साम्राज्य न केवल अपनी राजनीतिक और सैन्य शक्ति के लिए जाना गया, बल्कि प्रशासनिक दक्षता, आर्थिक सुदृढ़ता और सामाजिक संरचना की उत्कृष्टता के लिए भी इतिहास में अमिट छाप छोड़ गया।

आकृति 1: मौर्यकाल.....कृषि प्रणाली

मौर्यकालीन भारत वह काल था जब भारतीय समाज ने समन्वित रूप से शासन, धर्म, कृषि और व्यापार के आयामों में चमत्कारी प्रगति की। यद्यपि सम्राटों, मंत्रियों और युद्धों की गाथाएँ इतिहास में व्यापक रूप से वर्णित हैं, फिर भी उस युग की आत्मा को समझने के लिए आवश्यक है कि हम उसके मूल दृ कृषि दृ को समझें। कृषि उस समय केवल आजीविका का माध्यम नहीं थी,

वह जीवन की धड़कन थी। मिट्टी में हल चलाते कृषक के श्रम में केवल अन्न का उत्पादन नहीं होता था, बल्कि उसमें राष्ट्र की समृद्धि, स्थायित्व और सामाजिक ताने–बाने की आत्मा भी पाई जाती थी।

मौर्यकाल के दौरान कृषि न केवल जनजीवन की रीढ़ थी, बल्कि राज्य के वित्तीय ढांचे की भी आधारशिला थी। अर्थशास्त्र जैसे ग्रंथ इस बात का सशक्त प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि राज्य किस प्रकार कृषि को नीतिगत रूप से संगठित करता था, सिंचाई व्यवस्थाओं को सुनिश्चित करता था, भूमि के वितरण को विनियमित करता था, और कृषकों की स्थिति पर विशेष ध्यान देता था। परंतु यह केवल शासन की ओर से थोपी गई संरचना नहीं थी; यह समाज और प्रकृति के मध्य सामंजस्य की एक सुंदर मिसाल भी थी।

मौर्यकाल में कृषि केवल फसलों की बुआई और कटाई तक सीमित नहीं थी। यह एक व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया थी। इसका संबंध नदियों के बहाव, मौसम के चक्र, पर्व–त्योहारों, स्थानीय परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं से भी था। खेतों में उगने वाले धान, गेहूँ, जौ और तिलहन न केवल भूख की तृप्ति करते थे, बल्कि इनकी उपलब्धता राज्य की युद्ध–नीति, व्यापार मार्गों और कराधान नीति को भी प्रभावित करती थी। इस काल में कृषि ने धर्म को भी प्रभावित किया दृ कृषकों का बौद्ध धर्म की ओर झुकाव इस बात का प्रमाण है कि जीवन की कठिनाइयों के बीच आध्यात्मिकता और मुक्ति की खोज प्रबल हो चली थी।

इतिहास के अध्ययन में जब हम युद्धों, संधियों, सम्राटों और विदेश यात्रियों के विवरणों में उलझ जाते हैं, तब कहीं न कहीं हम उस अन्नदाता को भूल जाते हैं, जिसने न केवल समाज को पेट भर भोजन दिया, बल्कि राज्य की समृद्धि और स्थायित्व का मौन आधार भी रखा। यह शोध पत्र इसी मौन लेकिन अद्भुत शक्ति को स्वर देने का प्रयास है। मौर्यकाल की कृषि प्रणाली को समझना केवल फसलों की सूची या सिंचाई साधनों का विवरण नहीं है, यह उस युग के समाज, उसकी सोच, उसकी व्यवस्थाओं और उसकी मान्यताओं की तह में जाकर उसे समझने का प्रयास है।

इस शोध का उद्देश्य उस दृष्टिकोण को सामने लाना है, जिसमें एक कृषक की भूमिका को राज्य की रीति–नीति, धार्मिक परिवेश और सामाजिक संरचना के केंद्र में रखा जाए। चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार और विशेष रूप से सम्राट अशोक के शासनकाल में कृषि का जो विकास हुआ, वह केवल उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं था, बल्कि यह प्रशासनिक नीति, भूमि कर की दर, सिंचाई परियोजनाओं और कृषक वर्ग की सुरक्षा जैसे कई पहलुओं को भी छूता है।

प्राचीन साहित्य, विशेष रूप से कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', मौर्यकालीन कृषि व्यवस्था को समझने का एक सशक्त उपकरण है। इसमें उल्लेखित कृषि करों, भूमि की नापजोख, सिंचाई के साधनों, जलाशयों के निर्माण, बीज चयन, कृषि तकनीकों और कृषकों की देखभाल संबंधी नीतियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि उस काल में शासन की कृषि को लेकर दूरदृष्टि कितनी उन्नत थी। अर्थशास्त्र न केवल एक आर्थिक ग्रंथ है, बल्कि वह उस समय की सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक सोच का भी परिचायक है, जिसमें कृषि को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी।

विदेशी यात्रियों के विवरण, जैसे मेगस्थनीज़ का 'इंडिका', मौर्यकालीन समाज के दैनिक जीवन की झलक प्रस्तुत करते हैं। इनमें वर्णित कृषकों की श्रमशीलता, भूमि की उर्वरता, मौसम के अनुरूप खेती, सिंचाई साधनों का वैज्ञानिक उपयोग और कृषकों की सामाजिक स्थिति का चित्रण, उस युग की कृषि–प्रणाली की यथार्थपरक समझ प्रदान करता है। यह भी दर्शाता है कि उस काल की कृषि–नीति केवल स्थानीय ही नहीं थी, बल्कि उसकी छाप विदेशी पर्यवेक्षकों पर भी पड़ी थी।

यदि हम मौर्यकालीन कृषि को केवल एक आर्थिक प्रक्रिया मानकर उसका मूल्यांकन करें, तो हम उस काल की जटिलताओं और सौंदर्य को नहीं समझ पाएँगे। कृषक का कार्य एक धर्म था, उसका खेत एक तीर्थ। भूमि के प्रति श्रद्धा, बीज बोने की विधियाँ, कृषि उत्सव, और प्राकृतिक आपदाओं में सामूहिक सहयोग की परंपरा उस समाज की सामूहिक चेतना का प्रमाण हैं। यह शोध इसी चेतना को पुनः जीवंत करने का प्रयास है।

मौर्यकाल की कृषि व्यवस्था को समझना एक व्यापक दृष्टिकोण की माँग करता है। यह केवल तकनीकी नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक अध्ययन भी है। खेतों में हल चलाने वाले हाथों की कथा, उनके पसीने की महक, उनके त्याग और परिश्रम की महत्ता को पहचानना आवश्यक है। जब तक हम इतिहास के इन गुमनाम नायकों की आवाज़ को नहीं सुनते, तब तक हमारा अध्ययन अधूरा रहेगा।

उद्देश्य एवं लक्ष्य

- मौर्यकालीन कृषि संरचना का विश्लेषण करना।
- प्रयुक्त सिंचाई एवं कृषि तकनीकों का अध्ययन करना।
- भूमि वितरण की व्यवस्था को समझना।
- कृषक वर्ग की सामाजिक स्थिति और जीवनशैली का मूल्यांकन करना।
- कृषि प्रणाली के सामाजिक जीवन पर प्रभावों का विश्लेषण करना।
- कृषि और राज्य के मध्य संबंधों को स्पष्ट करना।

साहित्य समीक्षाः

मौर्यकालीन भारत की कृषि व्यवस्था पर अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। 'अर्थशास्त्र' (चाणक्य) में कृषि के महत्व और राज्य की भूमिका का विस्तृत वर्णन है। रोमिला थापर, राम शरण शर्मा, डी. डी. कोसंबी आदि इतिहासकारों ने अपने–अपने शोधों में मौर्यकालीन कृषि प्रणाली को राज्य नियंत्रण, श्रम व्यवस्था और उत्पादन की दृष्टि से समझने का प्रयास किया है। विदेशी यात्रियों जैसे मेगस्थनीज की रिपोर्ट "इंडिका" भी उस काल की कृषि व्यवस्था की झलक देती है। अधिकांश साहित्य इस बात पर एकमत है कि मौर्यकाल में कृषि एक संगठित, नियंत्रित और सामाजिक रूप से प्रभावशाली प्रक्रिया थी।

अनुसंधान पद्धतिः

यह शोध गुणात्मक पद्धति पर आधारित है। ऐतिहासिक स्रोतों, पुरातात्विक प्रमाणों, साहित्यिक ग्रंथों (अर्थशास्त्र, जैन–बौद्ध ग्रंथ), विदेशी यात्रियों के विवरण और आधुनिक इतिहासकारों के शोध पत्रों का अध्ययन कर निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 1: मौर्यकालीन कृषि फसलों का वितरण

क्रमांक	फसल का नाम	प्रमुख क्षेत्र (सम्भावित)	विशेषता
1	धान	मगध, कोसल, विदेह	मुख्य खाद्य फसल
2	गेहूँ	पश्चिमी उत्तर भारत, अवंती	सर्दी में बोई जाने वाली फसल
3	जौ	गांधार, तक्षशिला	मोटा अनाज, पाचन योग्य
4	तिलहन	मध्य भारत, महिष्मती	तेल निर्माण हेतु उपयोगी
5	गन्ना	मगध व कांची	गुड़ एवं शर्करा निर्माण
6	फल-सब्जियाँ	सर्वत्र	स्थानीय खपत हेतु उगाई जाती

तालिका 2: सिंचाई प्रणाली के प्रकार और उनका कार्यान्वयन

सिंचाई साधन	प्रयोग की सीमा	राजकीय भागीदारी	प्रभाव/विशेषता
कुएँ	ग्रामीण क्षेत्र	न्यून	छोटे स्तर पर सिंचाई समाधान
नहरें	मध्य गंगा क्षेत्र	उच्च	कृषि का विस्तार हुआ
जलाशय	दक्षिण भारत व मध्य भारत	उच्च	वर्षा जल संचयन में सहायक
कृत्रिम झीलें	अवंती, विदर्भ	माध्यम	जल संग्रहण और सिंचाई दोनों में उपयोग

तालिका 3: भूमि वितरण की स्थिति

भूमि प्रकार	स्वामित्व	उपयोगकर्ता	कर प्रणाली
कृषिभूमि	राज्य	किसान	भोग (20% से अधिक)
दान भूमि (ब्राह्मणों को)	राज्य	धार्मिक संस्थाएँ	करमुक्त
राजसी भूमि	राजा/कोष	चरागाह, जलाशय, आवासीय क्षेत्र	कराधान नहीं

तालिका 4: कृषक वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति

आर्थिक स्थिति	सामाजिक स्थिति	राजकीय निर्भरता	आपदा प्रबंधन नीति
उत्पादक	निम्न वर्ग में स्थान	कर संग्रह हेतु प्रमुख स्त्रोत	अकाल, बाढ़ में कर छूट का प्रावधान
ऋणग्रस्तता	कभी-कभी शोषित वर्ग	ग्राम स्तर पर नियंत्रण	ऋण माफी का कोई प्रमाण नहीं

तालिका 5: कृषि का सामाजिक प्रभाव

प्रभाव का क्षेत्र	परिणाम
शहरीकरण	कृषि अधिशेष ने नगरों को समृद्ध किया
व्यापार	अधिशेष उत्पादन ने आंतरिक व्यापार को बढ़ावा दिया
सामाजिक संरचना	कृषक वर्ग स्थिर रहा, किंतु उच्च वर्ग में प्रवेश नहीं
धार्मिक रुझान	बौद्ध धर्म की ओर झुकाव – सामाजिक असंतोष का संकेत

परिणाम एवं विश्लेषण

1. **कृषि संरचना:** मौर्यकाल में कृषि प्रधान समाज था। कृषि उत्पादन में धान, गेहूँ, जौ, तिलहन, गन्ना एवं फल–सब्जियाँ शामिल थीं। खेतों की नियमित जोत, परती भूमि की पहचान और दोहरी फसलें आम थीं।
2. **सिंचाई प्रणाली:** जल संरक्षण और सिंचाई हेतु कुएँ, नहरें, जलाशय और कृत्रिम झीलों का निर्माण किया जाता था। राज्य सिंचाई कार्यों में भागीदार था। 'अर्थशास्त्र' में जल व्यवस्था पर करों और देखरेख का उल्लेख मिलता है।
3. **भूमि वितरण प्रणाली:** भूमि का स्वामित्व राज्य के पास था, जिसे किसानों को उपयोग हेतु दिया जाता था। कुछ भूमि दान के रूप में ब्राह्मणों और मंदिरों को भी दी जाती थी। भूमि कर (भोग) के रूप में लिया जाता था।
4. **कृषक वर्ग की स्थिति:** कृषक वर्ग आर्थिक रूप से उत्पादक लेकिन सामाजिक रूप से दबा हुआ था। राज्य कर संग्रहण के लिए किसानों पर निर्भर था। परंतु बाढ़, अकाल जैसे आपदाओं में कर में छूट भी दी जाती थी।
5. **सामाजिक प्रभाव:** कृषि उत्पादन की स्थिरता ने शहरीकरण, व्यापार और उद्योग के विकास को बढ़ावा दिया। कृषक वर्ग की स्थिरता ने सामाजिक वर्ग संरचना को प्रभावित किया। कृषकों का बौद्ध धर्म की ओर झुकाव भी सामाजिक असंतुलन का संकेत देता है।

चर्चा एवं निष्कर्ष

मौर्यकालीन भारत की कृषि प्रणाली पर जब हम एक समग्र दृष्टिकोण से विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि यह केवल एक उत्पादन प्रणाली नहीं थी, बल्कि एक व्यापक सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक ताने–बाने में गहराई से बुनी हुई संरचना थी। इस व्यवस्था की जड़ों में श्रम, संसाधनों की बहुउपयोगिता और प्रशासनिक दूरदर्शिता की समन्वयित भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उस काल में जब दुनिया के अन्य हिस्से अभी कृषि की प्रारंभिक अवस्थाओं से गुजर रहे थे, भारत का मौर्यकाल संगठित, स्थायित्वपूर्ण और राज्य–केंद्रित कृषि मॉडल के रूप में सामने आ रहा था। यह प्रणाली मानव श्रम के परिश्रम, प्रकृति की अनुकूलता और राज्य की नीतिगत दूरदर्शिता का अनुपम उदाहरण थी।

इस प्रणाली की चर्चा करते हुए हम सबसे पहले सिंचाई व्यवस्था पर ध्यान केंद्रित करते हैं। मौर्य शासकों ने जल को केवल एक प्राकृतिक संसाधन नहीं, बल्कि जीवनदायिनी तत्व के रूप में देखा था। उन्होंने नदियों, झीलों, कुओं और कृत्रिम जलाशयों का योजनाबद्ध उपयोग कर जल को हर खेत तक पहुँचाने की व्यवस्था की। 'अर्थशास्त्र' में उल्लेखित जल कर प्रणाली इस बात का प्रमाण है कि जल के वितरण और संरक्षण को प्रशासनिक दायरे में लाकर एक नीति के तहत नियंत्रित किया जाता था। यह प्रशासनिक हस्तक्षेप न केवल कृषि उत्पादन को बढ़ाने का उपाय था, बल्कि यह एक व्यापक जीवन दृष्टि को प्रतिबिंबित करता था जिसमें प्रकृति और मानव श्रम का गहन समन्वय निहित था।

भूमि वितरण की प्रणाली में हमें राज्य और कृषक के बीच एक सशक्त अंतर्संबंध देखने को मिलता है। भूमि का स्वामित्व राज्य के अधीन था, किंतु उसकी उपज और देखभाल कृषक वर्ग द्वारा की जाती थी। यह संबंध केवल आर्थिक नहीं था, अपितु सामाजिक संरचना में भी इसकी गहरी छाया थी। राज्य द्वारा भूमि का दान, विशेषकर ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं को, केवल धार्मिक नहीं बल्कि सामाजिक शक्ति संतुलन का भी माध्यम था। इस भूमि नीति ने राज्य की कर प्रणाली, प्रशासनिक नियंत्रण और सामाजिक समरसता तीनों को एक सूत्र में पिरोया।

कृषक वर्ग की भूमिका मौर्यकाल की सामाजिक संरचना का सबसे गहरा पहलू है। वे उत्पादन का मूल स्रोत थे, किंतु सामाजिक मान्यता में उनका स्थान अपेक्षाकृत निम्न था। यद्यपि वे राज्य के आर्थिक पहिए को गतिशील रखने वाले स्तंभ थे, फिर भी उनके लिए सामाजिक और राजनैतिक सशक्तिकरण की सीमाएँ बनी रहीं। इसी असंतुलन ने उन्हें वैकल्पिक विचारधाराओं जैसे बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित किया, जहाँ उन्हें अधिक सामाजिक सम्मान और आध्यात्मिक स्थान मिल सकता था।

मौर्यकालीन कृषि नीति की सफलता का एक प्रमुख कारण यह था कि यह केवल संसाधनों के दोहन पर आधारित नहीं थी, बल्कि यह एक सम्यक दृष्टिकोण पर आधारित थी जिसमें मानव श्रम, राज्य नीति, धार्मिक मान्यताओं और प्रकृति के संसाधनों का संतुलित उपयोग शामिल था। जब हम इस प्रणाली के दीर्घकालिक प्रभावों की समीक्षा करते हैं, तो पाते हैं कि यह व्यवस्था केवल तत्कालीन आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करती थी, बल्कि यह एक स्थायी सामाजिक ढांचे की नींव रखती थी। कृषि उत्पादन की समृद्धि ने व्यापार, नगर निर्माण और शिल्प उद्योगों को भी उन्नति दी।

इस अध्ययन के निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि

मौर्यकालीन कृषि प्रणाली आज के संदर्भ में भी अनेक प्रेरणाएँ प्रदान करती है। इसमें एक आत्मनिर्भर और सहभागी प्रशासनिक मॉडल के तत्व निहित हैं जो आज की आर्थिक और सामाजिक नीतियों के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

भविष्य के लिए अनुसंशाएँ:

1. मौर्यकालीन कृषि नीति का तुलनात्मक अध्ययन आधुनिक कृषि नीतियों से कर उसके व्यावहारिक पक्षों को अपनाया जा सकता है।
2. राज्य और कृषक के बीच सहभागिता मॉडल को पुनः विकसित किया जा सकता है, जिसमें भूमि का स्वामित्व सार्वजनिक रहते हुए उपयोग की स्वतंत्रता हो।
3. जल संरक्षण की ऐतिहासिक नीतियों को आधार बनाकर वर्तमान जल संकट से निपटने की रणनीति विकसित की जा सकती है।
4. सामाजिक समरसता के लिए कृषक वर्ग को शिक्षा, सम्मान और सामाजिक सुरक्षा जैसे तत्वों से सशक्त किया जा सकता है, जैसा कि बौद्धिक आंदोलन ने उस युग में प्रस्तावित किया था।

अंतः मौर्यकालीन कृषि प्रणाली एक ऐसा दर्पण है जिसमें हम इतिहास की चेतना, वर्तमान की आवश्यकताओं और भविष्य की संभावनाओं को एक साथ देख सकते हैं। यह शोध केवल अतीत की व्याख्या नहीं, बल्कि भविष्य की संभावनाओं की खोज भी है, जो भारतीय कृषि व्यवस्था को एक नये सामाजिक और आर्थिक विमर्श की ओर प्रेरित करती है

सन्दर्भ

1. कौटिल्य – अर्थशास्त्र
2. मेगस्थनीज – इंडिका
3. रोमिला थापर – मौर्यकालीन भारत
4. डी. डी. कोसंबी – भारतीय सभ्यता का आर्थिक इतिहास
5. रामशरण शर्मा – प्राचीन भारत में शूद्र
6. नीलकंठ शास्त्री – भारतीय इतिहास
7. भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण रिपोर्ट्स
8. बौद्ध ग्रंथ – विनयपिटक, धम्मपद

Creative Commons (CC) License
This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.